101
नवंबर 2021

प्रगतिशील वसुधा

प्रगतिशील लेखक संघ, मध्य प्रदेश का प्रकाशन

न हुआ उलगुलान का अंत...

आज जब उधेड़ा जाएगा तुम्हारा पार्थिव शरीर,
क्या देखेंगे ये समाज, सरकारें, और न्यायपालिका?
डली भर ईमानदारी आदिवासी संघर्षों के प्रति
चंद लेख चिह्नित करते अन्याय के क़िस्से
और विचाराधीन क़ैदियों की आज़ादी का एक छोटा सा गीत.

फिर परसों जब बग़ाईचा तक लायी जाएगी तुम्हारी राख़
आँगन में स्थित बिरसा मुंडा की मूरत से रूबरू होगे तुम
तब उलगुलान की आग फिर होगी ज्वलंत
क्योंकि न बिरसा कभी मरा था,
न हुआ उलगुलान का अंत.

जब सत्ता के गलियारों में तुम्हें फिर 'आतंकी' कहा जाएगा
और न्यायपालिका पुलिस के झूठों पर फिर भरेगी हामी
तभी झारखंड के पेड़ों और नदियों से उछलेंगे नारे
कहीं एक क़लम भी उठेगी तुम्हारी याद में
क्योंकि न तुम कभी गए,
न हुआ उलगुलान का अंत.

●मेघा

6 जुलाई 2021

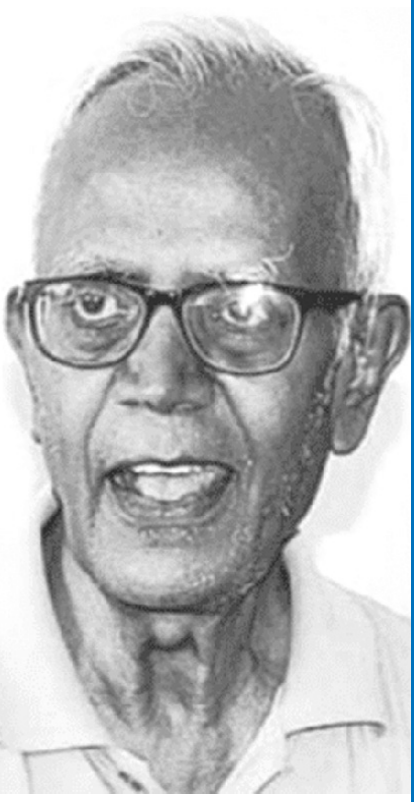

फ़ादर स्टैन स्वामी

26 अप्रैल 1937 - 5 जुलाई 2021

यह कविता आदिवासियों के अधिकारों के लिए आजीवन अहिंसक संघर्ष करते रहे फ़ादर स्टैन स्वामी (26 अप्रैल 1937 - 5 जुलाई 2021) और न्याय की लड़ाई लड़ने वाले उन जैसे सभी योद्धाओं के प्रति हमारी श्रद्धांजलि भी है, और यह संकल्प भी कि न्याय के लिए आवाज़ उठाने वालों की आवाज़ कभी भी ख़ामोश नहीं हो सकेगी।

मेघा बहल मानवाधिकारवादी संगठन पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स (पीयूडीआर) के साथ जुड़ी हैं और दिल्ली में रहती हैं।
ईमेल : postboxmegha@gmail.com

प्रगतिशील
वसुधा–101

नवम्बर 2021

MPHIN/2005/14693
ISSN 2231-0460

संस्थापक सम्पादक
हरिशंकर परसाई
कमला प्रसाद

सम्पादक
विनीत तिवारी

कार्यालय
प्रगतिशील वसुधा
102, चिनार अपार्टमेंट, 172, श्रीनगर एक्सटेंशन
इंदौर (मध्यप्रदेश) 452018
मोबाइल : 98931 92740
ईमेल : pwa.vasudha@gmail.com

प्रथम आवरण चित्र एवं अंदर के रेखांकन
अवधेश वाजपेयी (जबलपुर)
awdhesh.bajpai@gmail.com

पीछे का आवरण चित्र
पोस्टर - अशोक दुबे (इंदौर)
roopankan@gmail.com

आवरण संयोजन
रजनीश 'साहिल' (दिल्ली)
sahil5603@gmail.com

पृष्ठ सज्जा
वी.एम.ग्राफिक्स : नितिन पंजाबी (इंदौर)
nitinpanjabi2@gmail.com

मध्य प्रदेश के प्रगतिशील लेखक संघ के लिए संपादक, प्रकाशक, मुद्रक विनीत तिवारी, 102, चिनार अपार्टमेंट, 172, श्रीनगर एक्सटेंशन, इंदौर 452018 (मध्य प्रदेश) द्वारा प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स, ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095 से मुद्रित और प्रकाशित।

सहयोग राशि : यह अंक रुपये 120 मात्र (डाक व्यय अतिरिक्त)
विदेश में 20 डॉलर (डाक व्यय अतिरिक्त)

वसुधा का एक बचत खाता इलाहाबाद बैंक, बंगाली चौराहा ब्रांच, इंदौर में है।
खाता नाम : वसुधा (VASUDHA)
खाता क्रमांक : 20437443131
IFSC : IDIB000B604

राशि जमा करने के उपरांत कृपया पत्र एवं मोबाइल संदेश द्वारा अवश्य सूचित करें।

अनुक्रम

सम्पादकीय 5
विनीत तिवारी

अफ़ग़ानिस्तान : कल, आज और कल 10
सईद नक़वी : लिप्यंतरण - हरनाम सिंह

अदृश्य का चेहरा और बेज़ुबान की ज़ुबान हैं आनंद पटवर्धन की फ़िल्में 42
अहमद करीम

रेडिंग जेल कथा 64
ऑस्कर वाइल्ड : अनुवाद - कुमार अम्बुज

बॉदलेयर की कविताएँ 72
अनुवाद : अजित हर्षे

हरमान हैसे और उनके प्रकाशक 86
जयप्रकाश सावंत : अनुवाद - सुनीता डागा

पीरो का प्रेम झरोखा 95
सुखदेव सिंह सिरसा : अनुवाद - तरसेम

कविताएँ
शुभा - 111, हरिओम राजोरिया - 115, प्रकाश चन्द्रायन - 128,
अनुज लुगुन - 138, विहाग वैभव - 154, पीयूष पंड्या - 164

कहानियाँ
शैलेय - 176, शेखर मल्लिक - 192
सारंग उपाध्याय - 219

मिन निंग टाउन : नेटफ़्लिक्स पर नहीं 233
नंदिता चतुर्वेदी : अनुवाद - अर्पिता श्रीवास्तव

कश्मीर पर जाँच रिपोर्ट 238
औरतों की आवाज़

भाषान्तर : उड़िया कविताएँ 245
स्वप्ना मिश्र : अनुवाद- राधू मिश्र

आत्मकथा की परछाइयाँ : स्मरण नामवर सिंह 263
आशीष त्रिपाठी

अध्ययन, प्रतिबद्धता और साहस के प्रतिमान खगेन्द्रजी 281
अरुण कमल

अली जावेद की यादों का कारवाँ 289
फ़रहत रिज़वी

ईशमधु तलवार : स्मृति में चेहरा 295
सत्यनारायण

दुःख ही जीवन की कथा रही 298
चंद्रिका प्रसाद 'चंद्र'

बर्लिन में 'क़ायदे-क़ानून' का राज' है 303
रोज़ा लक्ज़मबर्ग

संपादकीय

कुछ विलम्ब ऐसे होते हैं जिनका कोई स्पष्टीकरण नहीं होता, उनके लिए सिर्फ़ क्षमा माँगी जा सकती है। लेकिन ऐसे विलम्ब के बाद भी इतना ही संतोष है कि देर ही हुई। क़रीब तीन वर्षों के अंतराल के बाद वसुधा आपके पास है। कोशिश रहेगी कि ऐसा विलम्ब कभी फिर न हो और धीरे-धीरे हम इसकी आदर्श आवृत्ति को प्राप्त कर लें।

पिछले दो वर्षों का समय अरबों पृथ्वीवासियों के लिए दुःस्वप्न की तरह आया। शुरू में यह ऐसे आया कि समस्त मानवजाति पर महासंकट आया है और इस महासंकट ने हम सबकी पहचानों को एक कर दिया है। सारे मतभेद और सांस्कृतिक-आर्थिक-वैचारिक भेद तथा बाक़ी भी हर तरह के फ़र्क़ मिट गए हैं और सबकी एक ही पहचान बची है - संकटग्रस्त अस्तित्व वाले प्राणियों की।

तो जो अपनी-अपनी लड़ाइयाँ लड़ रहे थे, उन सबको अपनी लड़ाइयाँ छोड़नी पड़ीं। चाहे वो सीएए-एनआरसी के ख़िलाफ़ देशभर में बने शाहीन बाग़ हों या देश के मज़दूर तबक़े की वे लड़ाइयाँ हों जो अपने अधिकारों को छीने जाने के ख़िलाफ़ लड़ी जा रही थीं। सरकारी सम्पत्तियों के निजीकरण की लड़ाई हो या रक्षा क्षेत्र में निजी क्षेत्र के प्रवेश के ख़िलाफ़, नयी शिक्षा नीति में छिपे विद्यार्थियों के लिए प्रतिकूल नियमों के ख़िलाफ़ हो या कश्मीर में मानवाधिकारों के उल्लंघन के ख़िलाफ़ या और तमाम तरह की छोटी-बड़ी लड़ाइयाँ - सब दरकिनार कर दी गईं। देश ही नहीं, अंतरराष्ट्रीय स्तर के मसले भी दरकिनार कर दिए गए।

लोगों के ज़ेहन में महामारी का ऐसा ख़ौफ़ समाया कि फ़िलिस्तीन जैसे जो मसले पीढ़ियों से नहीं भूले गए थे, उनको भी भुला दिया गया। लगा कि ये वबा न अमीरों को बख़्शेगी न ग़रीबों को, न ही ये फ़र्क़ करेगी मज़हब या जाति की बिना पर।

लेकिन जल्द ही सामान्य तर्कबुद्धि वालों को भी यह समझ में आ गया कि व्यवस्था अपने पुनरुत्पादन में लग गई है जिसके लिए अंग्रेज़ी में फ़िकरा है - बिज़नेस एज़ युज़ुअल। अमेरिका में जॉर्ज फ्लॉयड के साथ जो किया जा रहा था, फ़िलिस्तीन में फ़िलिस्तीनियों के साथ जो किया जा रहा था, भारत में मुस्लिम समुदाय के साथ जो किया जा रहा था, झारखण्ड के गिरिडीह में, आंध्र प्रदेश के प्रकासम में या देश भर के विभिन्न शहरों में दलितों के साथ जो पाशविकता बरती जा रही थी, वो सब कोई महामारी के असर नहीं थे। ये सब समाज में पहले से मौजूद था। महामारी ने सभी शोषितों और दमितों की पहचानों को एक मास्क के नीचे छिपा दिया था और दमनकारी सत्ताएँ महामारी पर नियंत्रण करने के बहाने हर विरोध को दबा देने के लिए खुलकर मैदान में थीं। महामारी के पहले तक तो उन्हें फिर भी अपना चेहरा छिपाने के लिए एक मास्क की ज़रूरत होती थी लेकिन अब वे पूरी निर्लज्जता के साथ ज़ुल्म कर रही थीं। वरवरा राव को लम्बे अरसे तक ज़मानत न दी जाना, अखिल गोगोई को यूएपीए में क़ैद रखना, फादर स्टेन स्वामी की जेल में मृत्यु, गौतम नवलखा और भीमा कोरेगाँव मामले में बंद सुधा भारद्वाज, शोमा सेन, रोना विल्सन आदि अन्य लोगों को ज़मानत न देते हुए उन्हें लगातार और भी प्रतिकूल हालात में धकेला जाना या दिल्ली दंगों का दोष उन सब पर लगाना जो हमेशा दंगे रोकने की भूमिका निभाते रहे - यह सब किया गया बिना मास्क के।

अगर महामारी को षड्यंत्र बताने वाले सिद्धांतों को न भी माना जाए तो भी जल्द ही इस महामारी को कुछ लोगों ने अपने लिए अवसर में बदल लिया। ये वही लोग थे जो महामारी के बिना भी मुनाफ़े के अवसर बनाने में सिद्धहस्त थे। जो अवसर बनना चाहिए थे एक-दूसरे की मदद की मिसालें क़ायम करने का, जो मौक़ा बनना चाहिए था इंसानियत की साझी ताक़त आज़माने का, जो मौक़ा बन सकता था आम लोगों में वैज्ञानिक चेतना के प्रचार-प्रसार का, उसे जनता को और मूर्ख बनाने में इस्तेमाल किया गया। इंसानियत की जगह मज़हब की दरारें और चौड़ी करने की कोशिशें की गईं। कालाबाज़ारी बढ़ी, धोखाधड़ी बढ़ी। लोगों ने दवा के इंजेक्शनों के नाम पर पानी के इंजेक्शन भर कर बेचे। इस मामले में तो फिर भी चंद इंसान थे जिनके चेहरे थे, जिनको पकड़ा जा सका और कुछ को सज़ा दी भी जा सकी लेकिन उस सांस्थानिक धोखाधड़ी को कौन सज़ा देगा जिसमें सरकार की स्वीकृति से दवा कंपनियों ने दवाओं के बेहिसाब दाम बढ़ाये, सरकार की स्वीकृति से अस्पतालों ने एक-एक दिन के लाखों वसूले। पूरे स्वास्थ्य सेवाओं के तंत्र को एक मुनाफ़ाख़ोर उद्योग में बदल दिया गया जिसने न केवल ग्राहकों और उपभोक्ताओं का शोषण किया बल्कि अपने कर्मचारियों की जान को भी